मेरी कुछ बातें

✍ मेरे मेहरबान, मोहतरम साहित्यकार **सैयद सिब्ते अहमद "क़मर जायसी"** के सुपुत्र, विद्यानगरी जायस के होनहार जवान, साइंटिस्ट और लेक्चरर **सैयद जावेद अहमद रिज़वी** जायसी की कई बरस पहले से इस तरह की ख़ाहिश रही है कि हर साल मुहर्रम में मुफ़ीद और प्रभावी हुसैनी लिट्रेचर का प्रचार-प्रसार किया जाये। इस साल उन्होंने अपनी इस ख़ाहिश में शिद्दत इख़्तियार की अबकी बन्दा भी तैयार हो गया। और **सैयिदुल उलमा** ताबा सराह के एक लेख का प्रकाशन होने के लिये तैयार करवा दिया जिसका हिन्दी तर्जमा डॉ० मौलाना **कल्बे सादिक़** साहब ने किया है। रिसाला कैसा है इसके लिये यही काफ़ी है कि **सैयिदुल उलमा** की रचना है और तर्जमा कैसा है इसके लिये भी इतना ही काफ़ी है कि डॉ० मौलाना **कल्बे सादिक़** साहब का है। अब रही छपाई की अच्छाई की बात तो **नूरे हिदायत फ़ाउण्डेशन** के ख़ास कार्यकर्ता **तज़हीब नगरौरी** साहब ने हत्तल इम्कान बेहतर से बेहतर बनाने की कोशिश की है। खुदावन्दे आलम **सैयिदुल उलमा** ताबा सराह के हुसैनी और इमामिया मिशन में **जावेद रिज़वी** के सहयोग को क़ुबूल फ़रमाए, उनकी मादरे गिरामी की मग़फ़िरत फ़रमाए और वालिदे माजिद को ज़्यादा से ज़्यादा सेहतो सलामती मुहम्मद[स०] व आले मुहम्मद[अ०] और शोहदा-ए-कर्बला[अ०] के सदक़े में अता फ़रमाए।

असीफ़ जायसी
इमामबाड़ा गुफ़रान मआब, लखनऊ

इमाम हुसैन[अ०] का सन्देश मानवता के नाम

ध्यान से सुनो! करबला के निर्दोष शहीद की आवाज़ विश्व के कोने-कोने में गूंज रही है।

ऐ मेरे अल्लाह की विस्तृत पृथ्वी के बसने वालों! ऐ इस लम्बी चौड़ी धरती के आबाद करने वालो! मैं तुम्हें तुम्हारे विभिन्न संप्रदायों के नामों से नहीं पुकारता इस लिये कि मेरी विस्तृत मानवता तथा महान प्रगड़िता के साथ सहानुभूति में तुम्हारे आपसी मतभेद की खींचातानी उसी प्रकार मिट जाती है जैसे महान समुद्र के हलन्त स्तर में नदियों की विकलता और झरनों का गुलगपाड़ा। मैं तुम सब को निमंत्रण देता हूं कि पता चलाओ कि मैं कौन हूँ? किस उद्देश्य के लिये उठा तथा मैं ने उसके लिये क्या किया?

सुनों! मैं कौन हूँ।

मैं अरब देश के सब से अधिक प्रतिष्ठित परिवार, बनी हाशिम का अपने समय में महान पूजनीय व्यक्ति तथा इस परिवार के सब से महान पुरूश मुहम्मद मुस्तफ़ा का अपने ज़माने में अकेला ही स्मारक था। तुम ने इस्लामी उपदेश को ध्यान से कभी न देखा हो, परन्तु इस्लाम धर्म का नाम अवश्य सुना होगा। अल्लाह का यह संदेश मेरे नाना मुहम्मद मुस्तफ़ा द्वारा संसार को पहुँचा था। इस संदेश द्वारा पूर्ण संसार को एक बलवान तथा शक्ति-सम्पन्न अल्लाह के सम्मुख सर झुकाने का उपदेश दिया गया था और अपने हाथ की बनाई हुई मूर्तियों की पूजा को मिटाया गया था। याद रखो! यह मूर्तियाँ सोने चांदी या पत्थर की ही होना आव यक नहीं; बल्कि हड्डियों तथा मांस से बना हुआ मनुश्य भी

कभी मूर्ति का रूप ग्रहण कर लेता है जब वह अल्लाह के संदेश और उसकी भक्ति के सामने, संसार पर अपनी शक्ति तथा सामर्थ्य की धाक बिठाना चाहता हो और संसार को अपने सामने सिर झुकानेपर विवश कर दे।

मेरे नाना ने इस मार्ग में बड़े कष्ट उठाए अरब देश के लोग तथा स्वयं उनके नातेदार, उनके विरोधी बन गए। लोग उन्हें पत्थर मारते थे, घायल करते थे,गलियों तथा मार्गों से उनके सिर पर कूड़ा-करकट डालते थे और विभिन्न प्रकार से दु;ख पहुंचाते थे पर मेरे दादा अबूतालिब ने जो इस पवित्र ''रसूल''(अल्लाह-दूत) के चचा थे, अपने भतीजे की हर अवसर पर सहायता की तथा उनको शत्रुओं के भय से सुरक्षित रखा। मेरे पिता ''हज़रत अली'' अभी अल्प-वयस्क ही थे कि उन्हों ने अपने बड़े भाई मुहम्मद साहब के साथ विश्वास-पात्रता का कर्तव्य-पालन आरम्भ कर दिया। मेरे नाना मुहम्मद मुस्तफ़ा को 'इस्लाम' के प्रसार के लिये अपनी मातृ-भूमि ''मक्का'' को छोड़ देने पर तत्पर होना पड़ा। इस अवसर पर ात्रुओं को यह मालूम हुआ तो वे आप की हत्या पर तैयार हो गये तथा इसी विचार से उनके निवास-स्थान को घेर लिया। यह एक ज्ञातव्य घटना है कि जब घर को शत्रु घेरे हुए थे तथा मुहम्मद साहब शत्रुओं की दृष्टि से बचते हुए ''मक्का'' से प्रस्थान कर रहे थे तो अपने चचेरे भाई, मेरे पिता 'अली' को अपने बिछौने पर चादर उढाकर सुलागये थे। और वह शत्रुओं की खिंची हुई तलवारों के बीच अपने प्राण को मुहम्मद साहब के लिये ढाल बनाए हुए उनके बिछौने पर विश्राम कर रहे थे।

'मदीने' पहुँचने के बाद भी मेरे नाना को विरोधियों ने शाँतिपूण जीवन बिताने न दिया। उनपर अनेक बार बड़ी बड़ी सेनाओं के साथ चढ़ाई की। आप ने इस सदर्भ में, बद्र, उहद, खन्दक, खैबर तथा हुनैन का नाम अवश्य सुना होगा। यह सब बड़े बड़े युद्ध वे थे जिन में विरोधी शक्तियों ने एका करके मेरे नाना के मिशन को छिन्न-भिन्न कर देना चाहा था, पर यह सत्य की शक्ति और मेरे पिता 'अली' की तलवार थी जिसने इन अवसरों पर मुहम्मद साहब को

विजयी बनाया। जब तक संसार के इतिहास में इस्लाम का नाम अवशिश्ट है, मेरे नाना 'मुहम्मद' तथा पिता 'अली' की याद स्थापित रहेगी।

संसार में मानवता के जितने गुण हैं वे सब मेरे नाना ने अरब देश में अपने उपदेश द्वारा फैलाए, आप को ज्ञात होगा कि संसार में सदा से शक्तिशाली मनुश्य दुर्बलों को अपमान की दृष्टि से देखते रहे, तथा मानव सम्बन्धी सर्वजनिक अधिकारों में भी बटवारा कर दिया परन्तु मेरे नाना ने समानता और बराबरी की एक शक्ति ााली आवाज़ उठाई, तथा व्यवहारिक रूप से हर संसार के स्तर को ऊंचा किया तुम्हें मालूम होगा कि मेरे नाना की मस्जिद में अज़ान देने वाला एक काले रंग का हब्शी, ''बिलाल'' था, जिसका वह इतना आदर करते थे जितने बड़े बड़े प्रतिशिठत परिवारों के मनुश्यों का भी न करते होंगे।

मेरे नाना की एकलौती पुत्री,मेरी माता फ़ातिमा थीं जिन से वह बहुत अधिक प्रेम रखते थे वह उनके पास जाती थीं तो उनके सम्मान में खड़े हो जाते थे। उनका विवाह मुहम्मद साहब ने अपने चचेरे भाई अली के साथ किया परन्तु साँसारिक दृश्टिकोण से मेरी माता जी की यह दुर्दशा थी कि एक समय तक उनके पास घर के काम-काज के लिये कोई नौकरानी तक न थी। स्वंय चक्की चलाती थीं, स्वयं चरखा कातती थीं तथा स्वयं घर में झाड़ू लगाती थीं मेरे नाना ने अपनी इस प्रिय पुत्री को एक दासी दी थी, जिसका नाम फ़िज्ज़ा था, तो यह आदेश दे दिया कि सम्पूर्ण कार्य बराबर फ़िज़्ज़ा ही से न लेना बल्कि एक दिन घर का काम-काज तुम करना और एक दिन फ़िज़्ज़ा से काम लेना। यह समानता का वह उपदेश था जिसे संसार को स्मरण रखना चाहिए।

अपने माता पिता के हम दोनों भाई हसन मुजतबा और मैं, बड़े प्यारे पुत्र थे। हमारे नाना हमसे इतना प्रेम रखते थे कि हमसे बालकों की भांति खेलते थे तथा मुसलमानों से हमारा परिचय देते थे कि देखो! ''ये दोनों मेरे नवासे मुझे बहुत प्रिय हैं. तुम सब भी इनका ध्यान रखना। वह कभी हमारा रोना सहन नहीं

करते थे और यदि उस बाल-अवस्था में कभी हम नमाज़ के सिजदे की दशा में भी उनकी पीठ पर आकर बैठ जाते थे तो हम को उस समय तक न उतारते थे जब तक हम स्वंय न उतर जायें उन्होंने हम दोनो के सम्बंध में यह भी कहा कि ''हसन , और हुसैन स्वर्गवासियों के सरदार हैं'' कभी हमें फूलों का गुलदस्ता कहा तथा कभी सर्वश्रेष्ठ आकाश का आभूषण। हमें अपने नाना के समय जो प्रसन्नता तथा संतोश प्राप्त था वह फिर कभी स्वप्न में भी दिखाई न पड़ा।

हमारी पहली आपत्ति

हम दोनों भाई प्रेम और ख़ुशी के वातावरण में जीवन बिता रहे थे कि सहसा हमारे नाना मुहम्मद साहब रोगी हो गये। मेरी अवस्था यद्यपि उस समय कम थी परन्तु मैं अनुमान अवश्य कर सकता था कि उनकी बीमारी के समय से ही हमारा वातावरण अस्वादिश्ट होना आरम्भ हो गया। हमारे नाना निरंतर अपनी ज़बान से अपने घरवालों के लिए सम्पूर्ण मुसलमानों को आदेश देते थे। उन्होने अपनी बीमारी के समय यह चाहा कि इस वसीयत को दस्तावेज़ के रूप में पूरा कर दें किन्तु लोगों ने इस अभिप्राय में सफ़ल न होने दिया तथा दस्तावेज़ लिखने न दिया हम को उस समय यही घटना यह समझा देने के लिए पर्याप्त थी कि वातावरण क्या है तथा परिस्थिति क्या होने वाली है।

मेरे नाना की मृत्यु के पश्चात्

मेरे नाना मुहम्मद साहब की मृत्यु के पश्चात् मेरे पिता जी ''अली'' तथा माता जी ''फातिमा'' को बड़े कश्ट उठाने पड़े यहां तक कि मेरी माता जी निरंतर एक पद्य पढ़ा करती थीं जिसका अनुवाद यह है,

''मेरे ऊपर इतनी विपत्तियां पड़ीं कि यदि वे दिनों पर पड़ती तो वे अंधेरी रात बन जाते''।

अन्त में मेरी माता जी इसी शोक, दुःख तथा निराशा की अवस्था में

स्वर्ग सिधारीं, यह मेरे लिए दूसरी आपत्ति थी। मेरे पिता जी की ओर साधारण जनता का जितना ध्यान मुहम्मद साहब की पुत्री फ़ातिमा के जीवन में था, बाद को उतना भी अवशिश्ट नहीं रहा। यदि मेरे पिता जी उस समय उस इस्लाम धर्म के लाभ को सामने न रखते जिसके लिए वह पैग़म्बर साहब के जीवन में अपना खून-पसीना एक कर चुके थे तो उस समय मुसलमानों में एक महान गृह कलह आरम्भ हो जाता। परन्तु मेरे पिताजी ने सांसारिक शासन के प्रति सदा बे परवाही तथा निशचिन्ता से काम लिया। उन्होंने अपने अधिकारों के केवल ज़बान से बयान कर देने को पर्याप्त समझा तथा व्यवहारिक रूप से विरोध न करके एकान्तीय जीवन स्वीकार किया और इस प्रकार इस्लाम को नष्ट हो जाने से बचा लिया यह मेरे लिये सांसारिक शासन से बेपरवाही का एक महान उपदेश था।

तीन भूत्व इसी प्रकार बीत गये चौथी बार लोगों ने मेरे पिता ''अली'' को विव ा किया कि वह शासन का उत्तरदायित्व स्वीकार करें। मैने देखा कि वह इस बात के होते हुये भी कि इससे पहले अपने अधिकारों की निरंतर घोषणा करते इस समय लोगों के आग्रह के बाद भी निरंतर इनकार कर रहे थे तथा किसी प्रकार तत्पर न होते थे। इसका कारण अवश्य यह था कि उस समय मुसलमानों का स्वभाव बिगड़ चुका था तथा ''ख़िलाफ़त'' (पैगम्बर साहब की उत्तराधिकारिता) के विशय में उनका दृष्टिकोण ही पलट चुका था। खिलाफ़त पूर्ण रूप से सांसारिक राज्य तथा शासन के साँचे में ढल गयी थी और सम्राटों जैसे लक्षण उसमें प्रकट हो गये थे। वह बात किसी प्रकार उस बेबनावटी, सिधाई तथा मन की स्वच्छता के अनुकूल न थी जिसे संसार में मेरे नाना ने फैलाया था तथा जिस पर मेरे पिता जमे हुये थे। यही कारण था कि मैं ने देखा, कि जब निरंतर तथा असीम आग्रह पर मेरे पिता जी राज्य सिन्हासन पर बिराजमान हुये तो संसार उनके आज्ञा पालन तथा उनकी शिक्षा ग्रहण करने के योग्य न ठहरा उनके विरोध का अन्धड़ उठ खड़ा हुआ।'जमल' 'सिफ़्फ़ीन तथा 'नहरवान' के युद्ध हुए, और अन्त में मस्जिद के भीतर

उनके सिर पर विष में बुझाई तलवार लगाकर उनका जीवन समाप्त कर दिया गया। यह बहुत कड़ुआ अनुभव था जो मुझको अवलोकन रूप में सांसारिक शासन तथा राज्य से अप्रसन्न बना देने के लिये पर्याप्त था।

शाम (सीरिया) के शासन पर मेरे ''बनी-हाशिम'' परिवार के शत्रु-परिवार, ''बनीउमय्या'' का क़ब्ज़ा था। इसी परिवार का एक सदस्य ''मुआविया (पुत्र) अबु-सुफ़यान''''दमिशक'' के सिन्हासन पर राजा बना बैठा था। इस ''मुआविया'' की माता ''हिन्दा'' वह थी जिस ने पैग़म्बर साहब के चचा ''हमज़ा'' का शव चिरवाया था तथा उनका जिगर मुंह में लेकर चबाना चाहा था। मेरे पिता जी से भी मुआविया ने युद्ध किया था। अब पिता जी के देहान्त के पश्चात् मेरे बड़े भाई हसन संसार के सरदार हुए। हसन ने देखा कि असीम दंगे फ़साद के बाद भी स्थिति सुधरने की कोई आशा नहीं इस लिए उन्होंने कुछ विशेश शर्तों के साथ ''शाम'' के राजा से सुलह कर लेना स्वीकार कर लिया।

सुलह नामे की इन शर्तों में एक महत्व पूर्ण शर्त यह भी थी कि ''मुआविया'' को अपने पश्चात किसी अन्य व्यक्ति को 'ख़िलाफत'' के लिए निर्वाचित करने का अधिकार न होगा, बल्कि ''खिलाफ़त'' बनी-हाशिम की ओर पलट जायेगी।

इस सुलहनामे के साथ मैं भी पूर्ण रूप से सहमत था। हमारे नाना का उपदेश यही था कि जब तक मिथ्या का उत्तर-दायित्व अपने ऊपर न आता हो उस समय तक सुलह को युद्ध से प्रधानता देना, तथा रवादारी से काम लेना उचित है। मेरे नाना ने ''हुदैबिया'' में ''क़ुरैश'' के नास्तिकों के साथ तथा मेरे पिता ने''सिफ़फीन'' में शाम वालों के साथ इसी सिद्धांत पर सुलह की थी। यही सिद्धांत भाई हसन के सामने था। किन्तु मैं ने देखा! कि इसके बाद भी मेरे भाई हसन को संतोश का जीवन बिताने न दिया गया तथा अन्त में एक गुप्त षडयन्त्र से विश द्वारा उनका जीवन समाप्त कर दिया गया। परन्तु इसके बाद भी जब तक कोई स्पश्ट कारण न होता मुझे कोई क़दम उठाने का अवसर न

था इस लिये इसके बाद दस वर्श तक मैं बिलकुल शान्त रहा। तुम समझ सकते हो कि युवावस्था जो साधारण रूप के जोश तथा मनोवेग का समय होता है, जिसमें अधिक्तर कभी अस्थाई आवेशों के अन्तर्गत प्रकट होते हैं यह पूर्ण काल मेरे उसी ही मौन तथा सहनशील वातावरण में समाप्त हुआ जो मेरे पिता ''अली'' को एकान्त काल में प्राप्त था।

मेरा स्वभाव धैर्य, सहनशीलता तथा असह्य कठनाइयों को सहन करने में पूर्ण रूप से दृढ़ हो गया था। यदि 'हसन' की सुलह मेरे स्वभाव के विपरीत होती अथवा उनके दबाब से मैं ने इस स्थिति को सहन किया होता तो उनकी मृत्यु के पश्चात् पर्याप्त अवसर था कि मैं परिस्थिति को पलट देता, किन्तु मैंने ऐसा नहीं किया तथा दस वर्श का लम्बा समय हसन के बाद भी बिता दिया। अब तुम समझ सकते हो कि मेरी आयु लगभग साठ वर्ष की हो चुकी थी तथा यह समय किसी उमंग, आवेश, मनोवेग या वलवले का नहीं होता। न तुमको यह विचार करने का अधिकार है कि मुझे राज्य तथा शासन की कोई मनोकामना थी, जबकि मेरे भूत-पूर्व वृतान्त तथा मेरा आत्म-सम्बन्धी अवलोकन इसके विरूद्ध साक्षी दे रहे हों

फिर क्या था?

शाम के राजा ''मुआविया'' ने उन तमाम शर्तों का उल्लंघन किया जो उस सुलहनामे में निश्चित हुई थीं मेरे पिता के मित्रों की चुन-चुन कर हत्या कर दी गई। यह परिस्थिति स्वयं असहनीय थी मेरे पिता कह चुके थे कि ''अत्याचार को उस समय तक सहन कर सकता हूँ जब तक उसका केवल मेरे शरीर से सम्बन्ध रहे और अन्य मुसलमानों से उसका कोई सम्बन्ध न हो'' परन्तु अब यह स्थिति थी कि हमारा नाम लेने वाले दूसरे मुसलमान कठिनाइयों में गिरफ़तार किये जा रहे थे। ''हजर-बिन अदि और उनके साथी ''दमिश्क़'' में फाँसी पर लटकाये गये, ''उमर-बिन-अल-हुम किल-खुज़ाई'' का सर

काटकर बरछी पर चढ़ाया गया यह हालात मेरे लिए अवश्य असहनीय थे, परन्तु इतनी भारी घटनाओं के बाद भी मैंने केवल प्रोटेस्ट को पर्याप्त समझा तथा '' मुआविया'' को पत्र लिखा कि शायद इतने से ही स्थिति सुधर जायें। यह इसलिए था कि तुम मुझ पर जल्दबाजी का अपराध न लगाओ। मुझे समाचार पहुंच रहे थे कि मेरे पिता को मिंबरों (मस्जिद में व्याख्यान देने के चबूतरों) पर गालियां दी जाती हैं इसके लिए हमने और हमारे भाई ने इतने ही को पर्याप्त समझा कि हमारे सामने ऐसा नहीं होता। इससे बढ़ कर सुलह पसन्दी तथा रवादारी और क्या हो सकती थी? मुझे यह भी मालूम हुआ कि शास्त्र में काट छांट आरम्भ हो गयी है तथा धर्म द्वारा निश्चित रीतियों को तोड़ा जा रहा है, जैसे कि इस्लामी राज्य में शराब का आयात आज़ादी से होने लगा और इस पर कोई रोकता है तो परवाह नहीं की जाती।

सम्भव था कि इस्लाम के उन बड़े बड़े आदेशों के आज्ञा पालन को ग़नीमत जानकर जो, दिखाने के लिए आवश्यक समझे जाते थे, इन सूतों को एका एकी की अपराध समझकर के चुप रहा जाता, किन्तु ''मुआविया'' ने सबसे अन्त में अपने पुत्र ''यज़ीद'' को ख़िलाफत' देना आवश्यक समझा तथा सारे मुसलमानों से उसकी बैअत (शासक मनवाने के लिए लोगों से प्रतिज्ञा ली गयी।)

यज़ीद कौन था?

''यजीद'' ''मुआविया'' का पुत्र था जो एक जंगली अरब स्त्री से पैदा हुआ था। वह पहले दरजे का दुश्टाचारी बदचलन तथा एक पापी मनुष्य था वह कभी नमाज़ न पढता था खुल्लम-खुल्ला शराब पीता था व्यभिचार तथा हुड़दंगे में सदा जुटा रहता था। और हद यह है कि मनोकामना पूर्ति के लिये अपनी मां और बहिन को भी न छोड़ता था। वह पैग़म्बर साहब का ''खलीफा'' बनकर शासन पर अधिकार कर लेता तो मुसलमानों में इस्लामी धर्म-शास्त्र का कोई

आदर और प्रतिश्ठा बाक़ी नहीं रह सकती थी। ऐसे व्यक्ति का ''खिलाफ़त सिन्हासन'' पर लाया जाना स्वयं असहनीय था इस पर यह कि मुझ पर उसकी बैअत के लिए ज़ोर दिया जा रहा था। इसका अर्थ यह है कि मैं स्वयं अपनी ओर से उसको पैग़म्बर साहब का उत्तराधिकारी स्वीकार कर लूँ और इस प्रकार उसके सम्पूर्ण दुराचारों के उचित होने का उत्तरदायित्व ले लूँ।

मैंने इसको पसन्द नहीं किया इस विशय में तुम भूतपूर्व घटनाओं से मेरी स्थिति का अनुमान कर सकते हो। मैं, पैग़म्बर साहब के परिवार का प्रतिनिधि था। मैं पद के लिहाज़ से इस्लामी धर्म शास्त्र का वक्ता था और चूँकि मेरी तथा इस्लाम की शिक्षा-दीक्षा का केन्द्र एक ही था, अर्थात पैगम्बर साहब की वही छाती जो अल्लाह के सन्देश उतरने का स्थान था, मेरे उठने बैठने तथा स्वप्न की मंजिल थी। मेरी दृश्टि में इस्लामी रीतियों का जो आदर हो सकता था, किसी अन्य व्यक्ति की दृश्टि में नहीं हो सकता था।

मैंने देखा, कि वही मूर्ति पूजा जिसे मेरे नाना ने अरब प्राय द्वीप से मिटाने का प्रयत्न किया था आज मानवीय सामर्थ्य के भेस में एके वरवाद को नश्ट कर रही थी। मैंने साफ़-साफ़ इनकार कर दिया कि मैं यज़ीद की बैअत नहीं करूंगा। मुझे मालूम था कि इस सूरत में मेरे लिए क्या होगा किन्तु मैं इसके लिए तैयार था।

यज़ीद की ख़िलाफ़त

''मुआविया'' ने मेरे विषय में मौन से काम लिया। किन्तु मुआविया का देहान्त हुआ और यज़ीद राज्य सिंहासन पर जमकर बैठ गया। उसके घमंड तथा अभिमान के लिये मेरा व्यवहार अत्यन्त अप्रिय था, इस लिए कि मैंने उसकी ''बैअत'' नहीं की थी। उसनें मदीने में, अपने गवर्नर को पत्र लिखा कि ''हुसैन से बैअत अवश्य लो, नहीं तो उनका सर काट कर मेरे पास भेज दो''। मुझे इस संदेश से जरा भी अचम्भा नहीं हुआ, इसलिये कि मैं इसे पहले से

अपने विचार में रक्खे हुए था। ''बैअत'' मेरे लिए एक बिलकुल असम्भव बात थी, सर कट जाना अवश्य सरल था, परन्तु उस आत्म-रक्षा के कर्तव्य को पूरा कर देने के बाद जो इस्लाम का एक बुनियादी सिद्धाँत है।

मैं ने इस कर्तव्य को पूरा करने के लिए अपनी मातृभूमि को छोड़ देना निश्चित कर लिया।

वतन से जुदाई

मैं किसी से लड़ने भिड़ने नहीं जा रहा था, इस लिए मैं ने अपने घर भर को (जिसमें स्त्रियां तथा बालक भी थे) अपने साथ लिया मेरे मुख्य मुख्य नातेदार भाई, भतीजे, बेटे मेरे साथ थे। मैं ने ''मदीने'' से इनके अतिरिक्त किन्हीं भी सहायकों तथा मददगारों को चलने का निमंत्रण नहीं दिया। इसी से तुम मेरा उद्देश्य समझ सकते हो।

अल्लाह के घर में शरण

मैं ने पैग़म्बर साहब के मज़ार से बिदा होने के प चात अल्लाह के घर ''काबा'' से अच्छा कोई स्थान न पाया इस लिये मैं '' मक्का'' में जाकर ठहर गया। मैं ने यहां भी सेनायें एकत्र करने का कोई प्रयत्न नहीं किया। सम्भव था कि यहाँ मुझे चुपचाप जीवन बिताने दिया जाता, किन्तु ऐसा नहीं हुआ। मैं सच कहता हूँ कि यदि मैं ''हज'' को छोड़कर ''मक्का'' से प्रस्थान न कर जाता तो, ''काबा '' के निकट ही मेरे रक्त की वर्षा होती। परन्तु मैं किसी प्रकार सहन न कर सकता था कि मेरे अस्तित्व के कारण ''काबा'' की प्रतिष्ठा मिट जाय।

'इराक़' की ओर रवाना होना

मैं ''मक्का'' से निकल खड़ा हुआ। अब मैं किधर जाता? 'इराक़' के

लोग मुझे बुला रहे थे तथा मैं अपने चचेरे भाई, ''मुसलिम'', को वहाँ की स्थिति देखने कि लिये भेज भी चुका था। उन्होंने मुझे यह सूचना भी दी थी कि यहाँ के लोग आपकी धार्मिक शिक्षा को ग्रहण करने के लिये उत्सुक हैं। मुझे अवश्य वहीं जाना चाहिये था। मैं रवाना हुआ, किन्तु इस दौरान में ''कूफ़ह के सिंहासन पर मेरे शत्रुओं का अधिकार हो चुका था। वहाँ का वातावरण मेरे बिल्कुल विरुद्ध हो गया था।

वास्तव में 'कूफ़ह' के मेरे, सच्चे मानने वालों ने जो मेरे अस्ली बुलाने वाले थे, कोई गद्दारी नहीं की। उन्हें स्वयं सहसा ऐसी कठिन स्थिति का सामना करना पड़ा कि वे बेबस हो गये किन्तु फिर भी उन्होंने मेरे साथ वफ़ादारी की हद कर दी। कड़े पहरे तथा नाकों के संरक्षण के होते हुए भी यह लोग 'कूफ़ह' से निकल कर मेरे पास पहुंच गये तथा मेरे लिये अपने प्राण तक दे डाले।

मेरे प्रिय एलची (दूत) मेरे भाई ''मुस्लिम' की ''कूफ़ह'' में हत्या कर दी गई। उसने वह काम किया जिसका एक अमिट प्रभाव मेरे चित्त पर स्थापित है। मुझे अब 'कूफ़ह' से कोई शुभ आ ा न थी परन्तु मुझे अब 'मक्का' या 'मदीना' पलट जाना भी सम्भव न था, मैं ने अपनी ओर से युद्ध का न कोई ख़याल किया था न कोई सामान, मेरे साथ मेरे ही ख़ास आदमी थे। इस स्थिति में कोई कारण न था कि मेरे विरूद्ध जंग की बातें की जातीं। मैंने जो पत्र 'कूफ़ह' वालों को लिखा था उसमें भी स्पश्ट रूप से लिख दिया था कि 'इमाम' (धार्मिक नेता) का अर्थ है, केवल वह जो सत्य का पालन करे, अल्लाह के निर्देश को ध्यान में रक्खे तथा पैग़म्बर साहब की रीति का ध्यान रखे। मैं बादशाहत तथा राज्य के लिये संसार की शांति को मिट्टी में मिलाना नहीं चाहता था, इसको मैं ने अपनी कार्य प्रणाली द्वारा पूर्ण रूप से प्रकट कर दिया था। किन्तु 'कुफ़ह' से मुझे गिरफ़्तार करने के लिये सेनायें भेजी गईं। मैं ने इस विरोधी सेना के आने के समय वह व्यवहार ग्रहण किया कि उस सेना को जो उस समय प्यास से बिलक रही थी प्रयत्न कर के पानी पिला दिया। उस समय

मेरे सम्पूर्ण अन्य विचारों पर मानव-सहानुभूति छाई हुई थी। मैं पूर्ण संसार से यह चाहता भी हूँ कि वे अपने बीच हजारों मत भेद होते हुए भी मानव-सहानुभूति को कभी न भुलायें तथा इसमें पक्ष-पात से काम न लें।

मेरी दृश्टि में न इसका कोई बदला था न मैं इसका कोई मुआवज़ा चाहता था, परन्तु मानवता की मांग यह हरगिज़ नहीं थी कि 'आशूर' तथा आशूर' से दो दिन पूर्व से इसी सेना द्वारा मुझ पर तथा मेरे नातेदारों, बल्कि छोटे छोटे बालकों पर भी पानी बन्द कर दिया जाये। बहर हाल मैं उस सेना के पहरे में, जो 'कूफ़ह से आई थी, 'कर्बला' की भूमि पर पहुँच गया।

कर्बला पहुंचने के बाद

मूझे दूसरे ही दिन से हज़ारों सवारों की टुकड़ियां लगा तार आती हुई दिखाई देने लगीं। सेनाओं से पूरा मैदान उबलने लगा। मेरे साथ मेरे सत्रह अठठारह नाते दार थे, और या फिर मेरे वे मित्र थे जो 'कूफ़ह' तथा अन्य दूसरे स्थानों से, मेरे पहुँचने का समाचार सुनकर, किसी प्रकार मेरे पास पहुँच गये थे। इन की संख्या सौ से अधिक न थी। मुझे आत्म-रक्षा के सिद्धांत को बहर हाल पूरा करना था, किन्तु इस शर्त से कि मुझे महत्त्वपूर्ण धार्मिक पथ का बलिदान न देना पड़े। मैं ने ऐसी बातें इख़्तियार कीं कि स्थिति सुधर जाए तथा युद्ध की परिस्थिति उत्पन्न न होने पाये। मेरी कार्य-विधि इतना सुलझी हुई थी कि स्वयं यजीदी सेना का कमान्डर 'उमर-साद' भी इस बात को मान गया कि मैं सुलह के मार्ग को अपनाए हुये हूँ। उसने 'कूफ़ह' के गवर्नर 'इब्ने ज़ियाद' को इस विश्य का पत्र भी लिखा, परन्तु 'इब्ने-ज़ियाद' को राज्य का अभिमान तथा शासन का नशा था। उसने मुझे पहचाना ही न था कि मैं कठिनाइयों को वहाँ तक सहन कर सकता हूँ। उसने मेरी सुलह पसन्दी को निर्बलता का परिणाम विचारा था। इस लिये उसने कहा कि 'हुसैन' को 'यज़ीद' की बैअत करना चाहिये' यही सूरत सुलह की है। मेरे लिये यह वही पहला प्रश्न था जो

अब अन्त में भी मेरे सामने था और यह निश्चित बात थी कि मुझे 'यज़ीद' की 'बैअत' कभी नहीं करना है। सुलह का अनुभव मेरे भाई तथा स्वयं मुझे मेरे प्रारम्भिक काल से इस समय तक हो चुका था। अब इस प्रकार की सुलह की कोई सम्भावना न थी जिसका परिणाम मेरी नहीं बल्कि मेरे सिद्धाँत, पंथ तथा धरोहर और ईमानदारी का नाश हो। मेरे सामने सेनाओं का समुद्र लहरें मार रहा था। मेरे चारों ओर वीरानी तथा बरबादी के अतिरिक्त कुछ दिखाई न पड़ता था। मेरे प्रिय भाई, भतीजे तथा सन्तान के सुन्दर मुखड़े उपस्थित थे। मेरे साथ पर्दादार स्त्रियां थीं, छोटे-छोटे बालक भी उपस्थित थे। नदी पर सेना का पहरा बैठ गया था। एक बूँद पानी हम तक पहुँचना असम्भव था और मैं छोटे-छोटे बालकों को प्यास के मारे तड़पते- बिलकते देख रहा था यह सब वे कारण थे जो मुझे 'यज़ीद' की बैअत' का निमंत्रण दे रहे थे। किन्तु इन सब के सम्मुख उस शिक्षा का ध्यान था जो मेरे नाना की फैलाई हुई थी, मेरे बैअत कर लेने से उस शिक्षा का नाश हो जाता। मेरा इरादा पहले से ही अटल था परन्तु व्यवहारिक रूप से जितनी कठिनाइयां बढ़ती थीं मेरे साहस में वृध्दि होती जाती थी। नवीं मुहर्ररम का संध्या समय था जब इस महान् सेना ने हम पर आक्रमण भी कर दिया, पर मैंने एक रात्रि की मुहलत ले ली। यह अवकाश, मैंने किसी सांसारिक उद्देश्य से नहीं लिया था बल्कि एक ओर तो मुझे अन्तिम बार अपने अल्लाह की प्राथना में पूरी रात व्यतीत कर देनी थी, तथा दूसरी ओर मैं यह चाहता था कि मेरे साथियों में से लोग मेरा साथ छोड़ कर जाना चाहें, उन्हें जाने का अवसर दे दूँ। इस लिये कि मैं किसी को बिना सोचे समझे अपने साथ शहीद होने पर विवश करना नहीं चाहता था। मैं ने अपने साथियों को एकत्रित किया और प्रकट रूप से यह आज्ञा दे दी कि वे मेरा साथ छोड़ कर चले जायें। किन्तु क्या कहना इन वीरों की विश्वास पात्रता तथा कर्तव्य पालन का, जिन्हों ने मेरे दिये हुए अवकाश से कोई लाभ न उठाया तथा एक ज़बान होकर कहा कि हम कभी आप का साथ नहीं छोड़ेगें। मुझे संसार के सामने अपने इन साथियों को आदर्श बना कर प्रस्तुत करना था। मुझे विश्व

के नेताओं का नमूना दिखलाना था, कि यह बिल्कुल ग़लत सिद्धांत है कि मनुश्य किसी कठिन आचरण के लिये लालच देकर अथवा वरग़ लाकर दूसरों को तत्पर करे और उससे अभिप्राय यह हो कि यह लोग एक हद तक हमारी ढाल बन जाएं। उन लोगो ने जो कहा था वही कर दिखाया। दसवीं मुहर्रम के प्रातः काल से यह मेरे वीर सिपाही निरंतर अपने प्राण उसी सिद्धांत की रक्षा में, जिस पर मैं जमा हुआ था निछावर करते रहे। यह एक आश्चर्यजनक वफ़ादारी का उदाहरण समझना चाहिये कि जब तक उनमें का एक भी बाक़ी रहा, मेरे किसी नातेदार, किसी जवान अथवा किसी कम-सिन बालक तक को कोई हानि नहीं पहुंची। जब मेरे यह वीर सैनिक संसार से प्रस्थान कर गए तो अब मैं था और मेरे नातेदार। यह मेरे लिये बहुत सहल था कि मैं स्वयं आगे बढ़कर अपना सर कटा दूं किन्तु मुझे तो अपनी सहनशक्ति की पूरी-पूरी परीक्षा देनी थी। इस लिये मेरे नातेदार मुझ से छुटने लगे। मैं इन में से किस को पहले मृत्यु के मुख मैं जाने की आज्ञा देता। इसमें मेरे भाई हसन की निशानी थी, मेरे पिता के स्मारक थे। मैं ने यह उचित जाना कि सबसे पहले अपने प्रिय पुत्र 'अली अकबर को, जो पैग़म्बर साहब के हमशक्ल भी थे, मरने के लिये भेज दूं। यह मंजिल मेरे लिये अवश्य कठिन थी पर जब मैं इस कठिनाई को झेल गया तो अनुमान नहीं किया जा सकता कि मुझे सफलता का कितना अनुभव हो रहा था।

अब मेरे दूसरे नातेदारों की बारी थी। मेरा भतीजा क़ासिम शहीद हुआ। दूसरे नातेदार भी यहीं एक एक करके मौत की नींद सो गये। सबके अन्त में मेरा वीर भाई 'अब्बास'[अ०] मुझ से रुख़सत हुआ। मैं उसके वियोग को किसी प्रकार सहन नहीं कर रहा था, इस लिये कि मेरा झंडा उसी के हाथ में था मेरी छोटी सी सेना का चिन्ह उसी के दम से अवशिश्ट था। परन्तु जब और कोई न रहा तो आख़िर 'अब्बास'[अ०] भी युद्ध कर स्वर्ग को सिधार गया। मेरी कमर इस शोक से टूट अवश्य गई, पर मेरी कार्य-शक्ति में कमी उत्पन्न नहीं

हुई। अब स्वयं मेरी बारी थी- मैंने तलवार खींची। उस हद तक मुझे अवश्य युद्ध करना था जितनी कि मुझ में मानव शक्ति थी। तुम्हें मालूम है कि इन सम्पूर्ण शोकों के होते हुये तथा, इन आपत्तियों के बाद भी मैंने युद्ध-क्षेत्र में अपने बाप, दादाओं की याद भूलने नहीं दी। बहर हाल हज़ारों सैनिकों से मैं ने अकेले युद्ध किया, इसमें मुझे जितना घायल होना चाहिये था उसका अनुमान तुम कर सकते हो। अन्त में वह अन्तिम कठिन चरण, जो मेरे लिये पहले ही अत्यन्त सहज था, आ ही गया। मैं घोड़े से ज़मीन पर गिरा तथा 'शिम्र' के खन्ज़र ने मेरे सर और गर्दन का आपसी सम्बन्ध तोड़ दिया। मेरा सर काटा गया तथा बर्छी पर बुलन्द किया गया। 'इब्ने ज़ियाद' की सेना ने वह सब कुछ किया जो एक अत्याचारी के अत्याचार की अन्तिम सीमा हो सकती है, किन्तु इन सब के बाद विजय किस की हुई? तथा हार किस की?

मैं अपने आचरण से न लज्जित हूँ न क्षुब्ध, परन्तु संसार जानता है कि 'यज़ीद' लज्जित हुआ और बहुत लज्जित। उसकी ज़िन्दगी मौत बन गई तथा मेरी मृत्यु ने मुझे अमर बना दिया। मुझे तुमको संदेश भी यही देना है कि किसी पवित्र तथा आदरणीय उद्देश्य के लिये सांसारिक कठिनाइयों की कभी परवाह न करना। तुम्हारी मानवता का यही सत्य है।

तुम जो मेरे स्मारकों की स्थापना करते हो और याद ताजा करते हो उनका सारांश यही होना चाहिये कि तुम मेरे उद्देश्यों की ऊंचाई को भी समझ सको तथा व्यवहारिक रूप से उसके पालन का प्रयत्न करो। स्मरण रखो- मैं किसी विशेश सम्प्रदाय से विशिष्ट सम्बन्ध नहीं रखता हूं। जो मेरे सिद्धांत तथा पथ पर ध्यान दे और उससे शिक्षा ग्रहण करे वही मुझ से लाभ उठा सकता है।

<u>Composing:</u> Ideal Computers Point
Patanala, Chowk, Lucknow-3 (Mob: 9935025599)